मुनिश्री साम्यसागर महाराज की संस्कृत साहित्य को अनुपम देन

डॉ.आशीष जैन आचार्य शाहगढ़, सागर

(राष्ट्रपति पुरस्कार प्राप्त)

महामंत्री- प्राकृत भाषा विकास फाउण्डेशन

संयुक्त मंत्री – अ.भा. दि. जैन शास्त्रिपरिषद्

सत्य सदैव शाश्वत होता है लेकिन सत्य प्रकट करने के साधन, भाषा और शैली में युगीन परिवर्तन होना स्वाभाविक-सा है। चर्या शिरोमणि परम पूज्य पट्टाचार्यश्री 108 विशुद्धसागर जी के संयम से संस्कृत संस्कृतज्ञ शिष्य पूज्य मुनिवर श्री साम्यसागर जी महाराज सर्वोदयी सर्वज्ञ वाणी को अनेक शीर्षक और उपशीर्षकों के माध्यम से सिद्धान्तों की सुरक्षा पूर्वक सामयिक चित्रण के साथ संस्कृत भाषा में स्वतंत्र और अपने गुरुदेव की देशना को लिपिबद्ध कर अपने उपयोग को साम्य और विशुद्ध बनाते हुए लोकोपकारक साहित्य श्री की वृद्धि कर रहे हैं।

विचार के गर्भ में ही तो आचार पलता है और आचार आत्मोद्धार का हेतु बनता है। पूज्य मुनिश्री के आध्यात्मिक चिंतन की अगाधता का अनुमान उनके विचार **विचार** संज्ञक प्रकृत ग्रन्थ को देखकर ही लगाया जा सकता है। इस ग्रन्थ में इतना प्रमेय है कि मात्र विचार शब्द पर एक श्रेष्ठ शोध प्रबन्ध लिखा जा सकता है। भारतीय साहित्य और संस्कृत प्रेमियों के लिए यह एक कालजयी अमूल्य धरोहर है। विचारों का इतना गहरा विश्लेषण कि अनेकांत सिद्धांत, द्रव्य-तत्त्व व्यवस्था, कार्य-कारण व्यवस्था, समाजोत्थान, राष्ट्र निर्माण, अहिंसा, दया, करुणा और परोपकार जैसे अनेक विषयों पर पूज्य श्री की लेखनी सशक्त रूप से मुखर होती हुई देखी जा सकती है।

इस ग्रन्थ का सर्वप्रकारेण अध्ययन करने पर अति संक्षेप में कहा जा सकता है कि यह ग्रन्थ भारतीय ज्ञान-विज्ञान के साहित्य की श्री वृद्धि करने वाला इक्कीसवीं सदी का एक अनुपम ग्रन्थ है, जो सदियों तक लोगों का पथ-प्रशस्त करते हुए अंधकार-अज्ञान में भटकते लोगों को ज्ञान के दिव्य प्रकाश से प्रकाशित करता रहेगा। इस ग्रन्थ के उद्धरण से समझते हैं –

व्यक्तेः विचाराः विश्वे मित्राणां शत्रूणां च संख्यावृद्धिं जनयन्ति। विचाराणां निर्मलता विशदता च मित्राणि जनयति। विचाराणां कलुष्यता शत्रूणां संख्यायाः वृद्धिं कारयति। निर्णयः स्वस्येच्छ्या भवति; यत् अस्ति, तदेवास्ति ।

व्यक्ति के विचार विश्व में मित्र एवं शत्रुओं दोनों की संख्या की वृद्धि कराने के कारण हैं। विचारों की निर्मलता तथा विशदता मित्रों को जन्म देती है। विचारों की कलुष्यता शत्रुओं की संख्या में वृद्धि कराती है। निर्णय स्वयं के अनुसार है, जो है, सो है।

यह कथन स्पष्ट करता है कि व्यक्ति का बाह्य संसार उसके आन्तरिक विचारों का ही प्रतिफल होता है। जैसे विचार होंगे, वैसा ही व्यवहार, दृष्टिकोण और संबंधों का निर्माण होगा। निर्मल, सकारात्मक और विशद विचार व्यक्ति को विनम्र, सहिष्णु और सहयोगी बनाते हैं, जिससे समाज में मित्रता, विश्वास और सद्भाव की वृद्धि होती है। ऐसे विचार दूसरों के हृदय को आकर्षित करते हैं और व्यक्ति को सामाजिक रूप से स्वीकार्य बनाते हैं।

इसके विपरीत, कलुषित, नकारात्मक और संकीर्ण विचार संदेह, द्वेष और संघर्ष को जन्म देते हैं, जिससे शत्रुओं की संख्या बढ़ती है। यह कथन व्यक्ति को आत्मचिन्तन का संदेश देता है कि निर्णय उसकी अपनी इच्छा और विवेक पर निर्भर है। मनुष्य जैसा सोचता है, वैसा ही उसका जीवन बनता है– "यत् अस्ति, तदेव अस्ति।" अतः जीवन में शांति, मैत्री और सफलता के लिए विचारों की शुद्धता अत्यन्त आवश्यक है।

एक अन्य उद्धरण विचारों के महत्व को प्रतिपादित करता हुआ - **सम्यक्-तत्त्वोपलब्धेः प्राप्तिः सम्यक्-विचारेणैव सम्भवति। यत्र विचारधारायाः विपरीतताऽस्ति, तत्र ज्ञानं सम्यक् कदापि न भवति। ज्ञानधारा विचारधाराया अनुकूलतया प्रवर्तते।**

सम्यक् तत्त्वोपलब्धि की प्राप्ति सम्यक् विचार से ही सम्भव है। जहाँ विचारधारा में विपरीतता है वहाँ ज्ञान सम्यक् कभी नहीं हो सकता। ज्ञानधारा विचारधारा के अनुकूल चलती है।

यह कथन इस सत्य को प्रतिपादित करता है कि सम्यक् तत्त्वोपलब्धि का मूल आधार सम्यक् विचार है। जब विचार शुद्ध, तर्कसंगत और निष्पक्ष होते हैं, तभी ज्ञान सही दिशा में विकसित होता है। विकृत अथवा विपरीत विचारधारा ज्ञान को भ्रमित कर देती है, जिससे सत्य का यथार्थ बोध संभव नहीं हो पाता। अतः ज्ञान की शुद्धता विचारों की शुद्धता पर ही आश्रित रहती है।

यह भी स्पष्ट होता है कि ज्ञान और विचार परस्पर विरोधी नहीं, बल्कि सहचर हैं। जिस प्रकार नदी अपनी धारा के अनुसार प्रवाहित होती है, उसी प्रकार ज्ञानधारा भी विचारधारा के अनुकूल ही

चलती है। इसलिए यदि व्यक्ति सम्यक् ज्ञान की प्राप्ति चाहता है, तो उसे पहले अपने विचारों को सम्यक्, संतुलित और सत्याभिमुख बनाना आवश्यक है।

विचारों के कारणों पर विचार करते हुए कहते हैं - **उत्तमविचारः, उत्तमकार्य, उत्तमपुरुषैरेव कृतं भवति। हीनजनानां नोत्तमविचारः, नोत्तमकार्य दृश्यते। ते केवलमाहार-भय-मैथुन-परिग्रह-संज्ञाचतुष्टये एव निमग्नाः भवन्ति। पापीजनाः सर्वकालं पञ्चपाप-चतुःसंज्ञायां व्याप्ताः भवन्ति। ते क्षुद्रगति-संसारे भ्रमन्तो दुःखमनुभवन्ति। ते स्व-आत्मानं करुणया न पश्यन्ति। रागज्वलायां विवेकधनं दग्धं कुर्वन्ति। पद-प्रतिष्ठा-धर्म-जाति-कुलख्यातिं विस्मरन्ति। इन्द्रिय-तन्त्रमध्ये निमग्राः, रागद्वेषबन्धनात् संयमं यशःकीर्तेः प्राणं नाशयन्ति ।**

उत्तम विचार, उत्तम कार्य, उत्तम पुरुषों के द्वारा ही होते हैं, हीन जनों के न उत्तम विचार देखे जाते हैं, न ही उत्तम कार्य। वे बिचारे आहार, भय, मैथुन, परिग्रह संज्ञा-चतुष्टय से ही बाहर नहीं निकल पाते हैं। पापी जीव सर्वकाल पाँच पाप और चार संज्ञाओं की पुष्टि में संलग्न रहते हैं तथा पुनः पापास्त्रव कर क्षुद्र गतियों में भ्रमण करते हुए घोर दुःख उठाते हैं। वे स्वात्मा पर करुणा भाव ही नहीं रख पाते। राग की ज्वाला में विवेक-धन को ही जला बैठते हैं। पद, प्रतिष्ठा, धर्म, जाति, कुल की ख्याति भूल जाते हैं। इन्द्रिय-तन्त्रों में उलझ कर, राग-द्वेष की रस्सी से संयम, यश-कीर्ति के प्राण ले लेते हैं।

उत्तम विचार और उत्तम कार्य केवल उन्हीं व्यक्तियों से उत्पन्न होते हैं जिनका जीवन विवेक, संयम और आत्मकरुणा से संचालित होता है। हीन प्रवृत्ति वाले जन आहार, भय, मैथुन और परिग्रह— इन चार संज्ञाओं में ही उलझे रहते हैं, इसलिए उनका चिंतन और आचरण उच्च नहीं हो पाता। पाँच पापों और संज्ञाओं में निरन्तर प्रवृत्त रहने से वे नए-नए पापास्त्रव करते हैं और परिणामस्वरूप निम्न गतियों में भ्रमण करते हुए दुःख भोगते हैं। यह स्थिति उनके आत्मकल्याण में सबसे बड़ी बाधा बन जाती है।

ग्रंथकार का संकेत है कि राग-द्वेष की प्रबलता में मनुष्य विवेक-धन को नष्ट कर देता है और पद, प्रतिष्ठा, धर्म, जाति तथा कुल-ख्याति जैसे मूल्यों को भी भूल बैठता है। इन्द्रियों के अधीन होकर वह संयम, यश और कीर्ति के प्राण ही हर लेता है। अतः संदेश यह है कि यदि व्यक्ति को उत्तम जीवन, यश और आत्मोन्नति चाहिए, तो उसे राग-द्वेष से मुक्त होकर विवेक, करुणा और संयम का आश्रय लेना अनिवार्य है।

युवा शक्ति के लिए प्रेरणीय कथनों का प्रस्फुटन इस ग्रन्थ में किया गया है। कहा गया है - **भारतस्य युवा शक्तिः विश्वस्य धरोहरोऽस्ति । युवानामन्तःकरणे न केवलं किञ्चिद् करणीयं भवति**

अपितु सर्वश्रेष्ठकार्याणां भावस्तेषामन्तः करणे उत्पद्यते। राजत्वात् भगवत्त्वं प्राप्तुं भावो भारतीययुवाशक्तेः मध्ये जायते। यस्मिन् देशे युवा शक्तिरस्ति, सा अपि विवेकशीलः, विचारशीलः चरित्रशीलश्चास्ति, सः केवलमेको देशो नास्ति अपितु अतीव महाशक्तिसम्पन्नो भवति। सम्पूर्ण विश्वं मित्रं वा शत्रु कर्तुं सामर्थ्य देशस्य युवानां समीपेऽस्ति। व्यसनयुक्तो युवा राष्ट्र विनाशयति, व्यसनमुक्तो युवा राष्ट्रं गौरवान्वितं करोति ।

भारत की युवा शक्ति विश्व की धरोहर है। इन युवाओं के भीतर कुछ करने का ही भाव नहीं आता, अपितु सर्वश्रेष्ठ कार्य करने का भाव उनके अन्तःकरण में लहरें लेता है। राजा से भगवान् बनने का भाव भारत की युवा शक्ति के अन्तर आता है। जिस देश में युवा शक्ति है और वह भी विवेकशील, विचारशील, चरित्रशील है, वह केवल एक देश ही नहीं है, वह बहुत बड़ा शक्ति का पिण्ड है। सम्पूर्ण विश्व को मित्र बनाना अथवा शत्रु, यह सामर्थ्य देश के युवाओं के पास ही है। व्यसन-युक्त युवा राष्ट्र को नष्ट कर देगा, व्यसन-मुक्त युवा राष्ट्र को गरिमामय बना देगा।

यह उद्धरण भारतीय युवा शक्ति को राष्ट्र और विश्व की अमूल्य धरोहर के रूप में प्रस्तुत करता है। इसमें कहा गया है कि भारतीय युवाओं के अंतःकरण में केवल सामान्य कार्य करने की आकांक्षा नहीं, बल्कि श्रेष्ठतम और असाधारण कार्य करने की चेतना विद्यमान रहती है। यही कारण है कि उनमें साधारण राजत्व से ऊपर उठकर भगवत्त्व—अर्थात् त्याग, सेवा और लोककल्याण—की भावना जाग्रत होती है। ऐसी युवा शक्ति राष्ट्र की आत्मा होती है, जो उसे साधारण भू-भाग से उठाकर महान शक्ति में परिवर्तित कर देती है।

ग्रंथ का संदेश यह भी है कि विवेकशील, विचारशील और चरित्रशील युवा ही राष्ट्र की वास्तविक पूँजी हैं। उनके हाथों में यह सामर्थ्य है कि वे सम्पूर्ण विश्व को मित्रता और सहयोग के सूत्र में बाँध दें या अपने आचरण से शत्रुता उत्पन्न कर दें। व्यसनग्रस्त युवा जहाँ राष्ट्र के पतन का कारण बनते हैं, वहीं व्यसनमुक्त, संयमी और मूल्यनिष्ठ युवा राष्ट्र को गौरव, प्रतिष्ठा और उज्ज्वल भविष्य प्रदान करते हैं। अतः युवाओं का दायित्व है कि वे अपने जीवन को सद्गुणों से समृद्ध कर राष्ट्रनिर्माण में सक्रिय भूमिका निभाएँ।

कार्य कारण व्यवस्था का बहुत ही सुन्दर विवेचन किया गया है। इसके एक उद्धरण से हम यहाँ समझ सकते हैं –

भिन्नवस्तुनो भिन्नोपादानं न भवति, उपादानं स्वद्रव्यस्य स्वद्रव्ये एव भवति। भिन्नद्रव्यमन्यद्रव्यं बहिरंगनिमित्तं भवितुं शक्नोति, किन्तु अन्तरंगनिमित्तं तु अन्तरंगस्यैवोपादानं भवति। कारणं साधनं

चानेकानि सन्ति, किन्तु वस्तुकार्यमुपादाने एव भवति। यदि योग्यमुपादानं नास्ति तर्हि बाह्यसाधनानि किमपि न कर्तुं शक्नुवन्ति। बाह्यसाधनानां विनापि कार्य पूर्णतां न प्राप्नोति, ते निमित्तं भवितुं शक्नुवन्ति, किन्तु कार्यस्य साधकतमकरणमुपादानमेव। एषा तत्त्वं विवेकपूर्वकं स्वीकर्तव्या। यथा वस्तुधर्मः, तथैव सहर्ष स्वीकर्तव्यम्। सम्यग्बोधः मोक्षमार्गेऽनिवार्यः। वस्तुतत्त्वस्य निर्णयः किंचिदपि विपरीतो न भवेत्, यथा तत्त्वं भवेत्।

भिन्न वस्तु का भिन्न उपादान नहीं होता, उपादान स्व-द्रव्य का स्वद्रव्य में रहता है। भिन्न-द्रव्य, भिन्न द्रव्य में बहिरंग निमित्त तो हो सकता है, परन्तु अन्तरंग निमित्त तो अन्तरंग का उपादान ही होगा। कारण एवं साधन अनेक हो सकते हैं, वस्तु कार्य उपादान में ही होता है। यदि योग्य उपादान नहीं है तो बाह्य साधन कुछ नहीं कर सकते। बाह्य साधनों के बिना भी कार्य पूर्णता को प्राप्त नहीं होता, वे निमित्त अवश्य ही होते हैं, परन्तु कार्य का साधकतम करण उपादान ही है, इस बात को बहुत ही विवेक पूर्वक स्वीकार कर लेना चाहिए। जो जैसा वस्तु धर्म है उसे उसी प्रकार सहर्ष स्वीकार कर लेना चाहिए। सम्यक् बोध मोक्ष-मार्ग में अनिवार्य अंग है। वस्तु तत्त्व का निर्णय किंचित् भी विपरीत नहीं होना चाहिए, यथा तत्त्व होना चाहिए।

यह उद्धरण कार्य–कारण व्यवस्था के मूल सिद्धान्त को अत्यन्त सूक्ष्मता से प्रतिपादित करता है। इसमें स्पष्ट किया गया है कि किसी भी वस्तु का कार्य उसके अपने द्रव्य में निहित उपादान कारण से ही उत्पन्न होता है; भिन्न द्रव्य कभी भी उस वस्तु का उपादान नहीं बन सकता। बाह्य कारण केवल बहिरंग निमित्त के रूप में सहायक हो सकते हैं, परन्तु अन्तरंग कारण वही होता है जो उस वस्तु के स्वभाव और द्रव्य में अंतर्निहित है। यदि योग्य उपादान उपस्थित नहीं है, तो कितने ही बाह्य साधन क्यों न हों, वे कार्य की उत्पत्ति नहीं कर सकते। इससे यह सिद्ध होता है कि कार्य का वास्तविक आधार उपादान कारण ही है, निमित्त कारण नहीं।

इस सिद्धान्त का दार्शनिक संदेश यह है कि वस्तु-तत्त्व को यथार्थ रूप में, बिना किसी विपरीत कल्पना के, विवेकपूर्वक स्वीकार करना चाहिए। जैसे वस्तु का धर्म है, वैसे ही उसे सहर्ष मान लेना ही सम्यक् बोध है, और यही सम्यक् बोध मोक्ष-मार्ग का अनिवार्य अंग है। कार्य–कारण के इस यथार्थ बोध से व्यक्ति भ्रम, मिथ्या धारणा और विपरीत निर्णय से मुक्त होता है। अतः यह उद्धरण आत्मबोध, तत्त्वनिर्णय और मोक्षसाधना के लिए आधारभूत मार्गदर्शन प्रदान करता है।

यह लेख मुनिश्री साम्यसागर महाराज की संस्कृत साहित्य में अनुपम देन को रेखांकित करता है। लेख का केन्द्रीय भाव यह है कि सत्य शाश्वत है, पर उसकी अभिव्यक्ति भाषा और शैली के माध्यम से

युगानुसार परिवर्तित होती रहती है। मुनिश्री ने अपने गुरुदेव की देशना को संस्कृत में लिपिबद्ध करते हुए विचार, आचार और आत्मोद्धार के गूढ़ तत्त्वों को सशक्त रूप में प्रस्तुत किया है। उनके ग्रन्थ में विचारों की भूमिका, सम्यक् विचार से सम्यक् ज्ञान की प्राप्ति, तथा राग-द्वेष से ग्रस्त जीवन के दुष्परिणामों का सूक्ष्म और गहन विश्लेषण मिलता है, जो भारतीय दर्शन, विशेषतः अनेकान्त, तत्त्व-व्यवस्था और नैतिक मूल्यों को सुदृढ़ करता है।

लेख का सार यह भी है कि यह ग्रन्थ केवल दार्शनिक विवेचन तक सीमित नहीं, बल्कि समाज, राष्ट्र और युवा शक्ति के निर्माण का मार्गदर्शन करता है। भारतीय युवा शक्ति को विश्व की धरोहर बताते हुए विवेकशील, विचारशील और चरित्रशील युवाओं को राष्ट्र की वास्तविक शक्ति माना गया है। साथ ही कार्य–कारण व्यवस्था के माध्यम से यह प्रतिपादित किया गया है कि वास्तविक परिवर्तन उपादान से ही संभव है, बाह्य साधन केवल निमित्त हैं। समग्र रूप से यह लेख निष्कर्ष देता है कि मुनिश्री साम्यसागर महाराज का यह ग्रन्थ इक्कीसवीं सदी में भारतीय ज्ञान-परम्परा को समृद्ध करने वाला, सम्यक् बोध और मोक्ष-मार्ग की दिशा दिखाने वाला एक कालजयी साहित्यिक योगदान है।